हिन्दी आलोचना ज-५०२४

इकाई - ५ गजानन माधव मुक्तिबोध की साहित्यिक मान्यताएँ

मुक्तिबोध (1917-1964) ने आलोचना की कोई व्यवस्थित पुस्तक नहीं लिखी। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' के अलावा उनका आलोचनात्मक लेखन 'निबन्ध' एवं 'डायरी' के रूप में है। मुक्तिबोध मूलत: रचनाकार हैं अत: उनकी आलोचना एक रचनाकार के आपद्धर्म की तरह है। छायावादी कवियों ने अपने आलोचनात्मक लेखन के द्वारा अपनी रचना की पृष्ठभूमि समझाई तथा अपनी रचना के लिए रास्ता बनाया था। यही कार्य मुक्तिबोध भी करते हैं। वह अपनी कविता की फैण्टेसी को स्पष्ट करने के लिए 'कामायनी' की फैण्टेसीपरक व्याख्या करते हैं। कला के तीन क्षणों का विश्लेषण भी अपनी रचना प्रक्रिया को खोलने का प्रयास है।

'एक साहित्यिक की डायरी' (1964ई.) में वह अपने मौलिक विचारों का सूत्रपात करते हैं। मुक्तिबोध के आलोचना कर्म की शुरुआत से पहले मार्क्सवादी आलोचना अपना स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी। शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रांगेय राघव और रामविलास शर्मा के लेखन के बरक्स अज्ञेय के नेतृत्व में प्रयोग-वादियों की आधुनिकतावादी दृष्टि का संघर्ष था।

मुक्तिबोध भी इस संघर्ष का हिस्सा बनते हैं। मुक्तिबोध की आलोचना इन दो पाटों के संघर्ष से पैदा होती है। वह प्रगतिवादी आलोचना की कमियों की ओर इशारा करते हुए वस्तुनिष्ठ आलोचना पद्धति के विकास पर जोर देते हैं। आधुनिकतावादी सिद्धान्तों पर वह जनतान्त्रिक धैर्य के साथ चिन्तन करते, विचार का केन्द्र बनाते हैं। फिर उसके तर्क की पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं और उसके चिंतन की असंगति को उजागर कर देते हैं।

मुक्तिबोध के अनुसार कविता भाव-व्यापार है लेकिन यह भाव या मन व्यक्तिबद्ध नहीं है। व्यक्ति अकेला नहीं वह समाज में रहता है। अन्य लोगों से सम्पर्क के दौरान वह जगत का आभ्यन्तरीकरण करता है, जगत का यही आभ्यन्तरीकरण व्यक्ति का भावन बन जाता है। फिर इस आभ्यन्तरीकृत भाव को वह बाह्य रूप देता है। साहित्य भाव के इस बाह्यीकरण का एक रूप है।' इस जटिल द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया-बाह्य का आभ्यन्तरीकरण और आत्म का बाह्यीकरण - से हमारा मन बनता, बिगड़ता और संवरता है। इस जगत के प्रति मनुष्य जो प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता है, वे ज्ञानात्मक भी होती हैं और संवेदनात्मक भी।' मनुष्य की

संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं ही साहित्य में व्यक्त होती है हालांकि इनका संबंध ज्ञान से भी होता है, क्योंकि ज्ञान-प्रसार के बीज ही भाव-प्रसार सम्भव होता है।

मुक्तिबोध काव्य-रचना के तीन क्षणों का वर्णन करते हैं जिन्हें 'कला के तीन क्षण' भी कहा जाता है। उनके अनुसार कला का पहला क्षण- जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण' है। यह क्षण जीवन के साधारण अनुभवों से भिन्न होता है। 'जीवनानुभूति' का यह क्षण स्वतः प्राप्त नहीं हो जाता, इसके लिए प्रयास करना पड़ता है। रचनाकार को अपने अनुभव का विस्तार करना चाहिए, जीवन को भोगना और इसे जानना चाहिए। जीवन-तत्त्व के लिए व्यक्ति जो संघर्ष करता है, उसका राजनीतिक-सामाजिक ही नहीं साहित्यिक महत्व भी है। उनके अनुसार-' यह अनिवार्य नहीं है कि काव्य की वास्तविक रचना का क्षण युगपत् रूप से, हृदय के द्रवण का, चित्त की रसात्मकता का भी क्षण हो। हृदय में संचित प्रतिक्रियाएं, अनुभव, आवेशमय अनुरोध, अतृप्त स्वप्न राशियां - जो हृदय में संचित हैं - उत्थित, तरंगित और प्रवाहित होकर संवेदनात्मक उद्देश्यों की दिशा में जब उभड़ने लगती हैं और

और साथ ही जीवन-दृष्टि से ज्योतित होकर अन्तर्नेत्रों के सम्मुख दृश्यमान होने लगती हैं, तब, वस्तुतः हमें 'एस्थेटिक इमोशन्स' प्राप्त होते हैं। काव्य रचना के प्रथम क्षण को संगत रूप से जीने के लिए कवि को विश्व दृष्टि अर्जित करनी पड़ती है। जीवनानुभव की तरह 'विश्वदृष्टि' भी कवि को अर्जित करनी पड़ती है। 'जब तक हम मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में आस्था न रखें, और आध्यात्मिक रूप से उससे सम्बद्ध न हो जायें।' विश्वदृष्टि प्राप्त नहीं होती। वह कहते हैं - "आज ऐसे कवि-चरित्र की आवश्यकता है, जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और हार्दिक आकलन करते हुए, सामान्य जनों के गुणों और उनके संघर्षों से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करे, उनके संचित जीवन-विवेक को स्वयं ग्रहण करे, तथा उसे और अधिक निखारकर कलात्मक रूप में उन्हीं की चीज को उन्हें लौटा दे।"

कला का दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैण्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह फैण्टेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। रचना के पहले क्षण का दूसरे में परिवर्तित होना वैयक्तिक से

निर्वैयक्तिक होने की यात्रा है। निजबद्ध अनुभव का कलात्मक अनुभव में बदल जाना है।

कला का तीसरा और अन्तिम क्षण वह है जिसमें फैण्टेसी शब्दबद्ध होने लगती है। रचना की परिपूर्णता तक तीसरा क्षण चलता है। इस गतिमान प्रक्रिया में फैण्टेसी अपने मूल रूप का परित्याग करके नवीन रूप धारण करती है। शब्दबद्ध होने के बाद तैयार रचना मूल फैण्टेसी की पुत्री होती है, प्रतिकृति नहीं। इस प्रक्रिया में बहुत से नए तत्त्व फैण्टेसी में आ जाते हैं। उसके भीतर रहने वाला 'भावनात्मक उद्देश्य' उसके विकास की 'संवेदनात्मक दिशा' तय करता है। यह 'भावनात्मक उद्देश्य' इस क्षण में बहुत क्रियाशील होता है। इस समय फैण्टेसी की 'प्रधान पीड़ा' अपना समर्थन, संरक्षण और पोषण करने वाले अन्य अनेक अनुभवों को अपने भीतर समेट लेती है। मुक्तिबोध मानते हैं कि यह फैण्टेसी (अर्थात रचना) भाषा को भी समृद्ध करती है। उसमें नए-नए अर्थ भरती है और 'इस प्रकार कवि भाषा का निर्माण करता है।'

नयी कविता में 'संपूर्ण मानव'

की प्रतिष्ठा पर बल देते हुए वह लिखते हैं -
"जब तक संपूर्ण मनुष्य को लेकर हम न चलेंगे, तब तक उसके किसी एक ही अंश को सर्वप्रधान बनाकर हम संपूर्ण को खंडित कर देंगे। जब तक हम आज के युग के पीड़ित मनुष्य की संपूर्ण आत्मसत्ता का चित्रण नहीं करते, उसके वास्तविक सुख-दुख, उसके संघर्षों और आदर्शों का अंकन नहीं करते, उसके अनिवार्य भवितव्य और कर्त्तव्य का मार्ग प्रशस्त नहीं करते, तब तक नयी कविता का कार्य अधूरा है।' यह काम जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि या अभिजन कलावादी दृष्टि से नहीं किया जा सकता। न ही इसे 'अंतर्वस्तु' और 'कला' के दो अलग खानों में बांटकर किया जा सकता है। जीवन की सापेक्षता में विकसित आलोचनात्मक प्रतिमानों को विकसित करके ही यह काम किया जा सकता है जिसमें ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान का पार्थक्य स्वतः समाप्त हो जाता है।

घोषणा – लॉकडाउन पीरियड में एम.ए. चतुर्थ सेम. के विद्यार्थियों को पाठ्य-सामग्री उपलब्ध कराने के क्रम में 'समकालीन हिन्दी आलोचक और आलोचना' डा॰ रामबक्ष, 'हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी' निर्मला जैन एवं 'हिन्दी आलोचना का विकास' मधुरेश की पुस्तकों से यह सामग्री तैयार की गई है।

ला. लिपिका
08.04.2020